DOI: 10.51220/hjssh.v3i1.8

Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 3 pp. 53-63, 2008

आधुनिक 'सामाजिक विमर्श' और 'मानसकार' तुलसी

श्यामधर तिवारी

हिन्दी विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर, पौड़ी-गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

Received 19.10.2008, Accepted 30.12.2008

ABSTRACT

'विमर्श' का अर्थ है-विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क आदि। किसी विषय पर गम्भीरता से सोचना, समीक्षा करना, मीमांसा करना विमर्श कहलाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मानसकार तुलसी के साहित्य को वर्तमान सामाजिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य मे विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

Key words:- *Tulsi, Ram Charit Manas, Modern Socitey.*

वर्तमान आधुनिक परिवेश में 'विमर्श' के नाम पर 'दलित विमर्श' 'स्त्री विमर्श' आदि का बहुत बोल-बाला और प्रचलन-सा हो गया है। सहस्त्रों वर्षों की सामाजिक व्यवस्था को 'विमर्श' के नाम पर खँगाला जा रहा है और नये ढंग से, नयी मानसिकता के साथ पुराने साहित्य और साहित्य में वर्णित भावों और विचारों को 'नयी संवेदना' के नाम पर चुनौती दी जा रही है।

ऐसा ही प्रकरण तुलसी के 'ब्राह्मण विमर्श' को लेकर अनवरत जारी है। तुलसी के साहित्य में 'नारी' और 'दलित' वर्ग के लिए कटूक्तियों का प्रयोग और प्रहार किया गया है। 'नारी-विमर्श' 'दलित विमर्श' के विरुद्ध बहुत कुछ तो कहा ही गया है, साथ-ही, ब्राह्मण विमर्श के पक्ष में तुलसी के दुराग्रह की सीमा भी परीक्षण की माँग करता है। तुलसी का साहित्य अनेक अच्छाइयों और मर्यादाओं का पोषक होते हुए भी, इन विमर्शों की तुला पर किसी शुभ पक्ष का द्योतक नहीं है।

तुलसी का उद्घोष है-'कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई' अर्थात् कीर्ति, काव्य (भनिति) और ऐश्वर्य (विभूति) वही अच्छा होता है, जो गंगा (सुरसरि) के समान सब का हित करे। तुलसी का 'मानस' सब प्रकार से वरेण्य है, पर 'आधुनिक विमर्श' की तुला पर उनकी भनिति (काव्य) न तो 'नारी विमर्श' का और न ही 'दलित विमर्श' का हित कर पायी और न ही 'ब्राह्मण संस्कृति' की दुराग्रही उच्चता का।

मानवीय गरिमा और सामाजिक समता की स्थापना की दृष्टि से, समाज् के एक विशाल तबके को हीन और हेय दृष्टि से देखे जाने की प्रवृत्ति और मनोवृत्ति का त्याज्य करना आवश्यक है। यदि सामाजिक सोच में परिवर्तन नहीं होगा, तो एक मनोवैज्ञानिक-वैचारिक विस्फोट का क्रम समाज को नष्ट कर सकता है।

© SHARAD

'सामाजिक विमर्श' का यह पहलू केवल मानसकार तुलसी के साहित्य को ही लेकर नहीं, अपितु प्रेमचन्द जैसे साहित्यकारों के साहित्य को भी 'नये विमर्श' की कसौटी पर कसा जा रहा है। 'प्रामाणिकता' और 'स्वानुभूति' की संवेदना, श्रेष्ठ मानी जा रही है। मान्यता के रूप में परिभाषा गढ़ी गयी है कि 'दलित विमर्श' में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य, दलितों के उत्थान में अधिक सशक्त और सहायक है और इसी प्रकार स्त्री-लेखिकाओं द्वारा लिखा गया साहित्य 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से अधिक सशक्त और प्रभावक है।

आज 'जातीय तेवर' और 'नये मुहावरों' को गढ़ कर सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं और मूल्यों के आलोक में, साहित्य को चिन्हित किया जा रहा है। सामाजिक परम्परा के पूर्व प्रचलित 'जातिसूचक' शब्दों को साहित्य के कथानक से विलुप्त करने का पुरजोर आह्वान किया जा रहा है। चिन्ता का विषय यह है कि अब समस्त भारतीय वाङ्मय से कितने शब्दों को हटाया जाय और पुनः उस वाङ्मय को कैसे पुनर्मुद्रित किया जाये? यदि आर्थिक व्यवस्था करके पुनर्मुद्रण की समस्या का निदान हो भी जाता है, तो भी समाज के जन-मानस में रच-बस गये मुहावरों-लोकोक्तियों में प्रयुक्त होने वाले असम्मानजनक 'जातिवाचक' शब्दों को कैसे निकाला जाये? यह समाजशास्त्रियों एवं चिन्तकों के लिए चिन्ता एवं विमर्श का विषय है।

क्योंकि "आज भी हम चाहे समाज के जितना विकसित होने का दावा करें और चाहे कितना भी अपने को उपभोक्तावादी संस्कृति, वैज्ञानिक चेतना का संवाहक मानें, लेकिन मानवीय अस्मिता की परिभाषा करते समय हम जातिगत सोच का परित्याग नहीं कर सकते हैं। जातिगत परिवेश की चेतना हमारे सामाजिक संस्कारों में इतनी गहरे व्याप्त है कि चाहे जो भी जाति हो अथवा उपजाति हो, सभी में जाति-बोध गहरे व्याप्त हैं। आज भी ब्राह्मण वर्ग जब शादी-विवाह की परम्पराओं की बात करता है, तो उपजाति और गोत्र-बन्धन को प्राथमिकता दी जाती है। इसी प्रकार उच्च वर्ग की लगभग सभी जातियाँ इस उपजाति बन्धन को सम्मान देती हैं और कम-से-कम सामाजिकता के लिए तो निश्चित ही। यही हाल समाज की निम्न जातियों का भी है। निम्न जातियाँ, जिन्हें भारतीय समाज सुधारकों ने सामाजिक व्यवस्था में 'दलित' नाम दिया, है, भी इस वर्ग/वर्ण बोध से संयुक्त हैं।.... भारतीय समाजशास्त्रियों के लिए यह चिन्ता का विषय होना चाहिए कि जिस समाज को हम आज आदर्श समाज मान रहे हैं, वह जड़ों तक विष से युक्त हो गया है।"[2]

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' से नारी की उच्चता और सामाजिक समता का भान

होता है, किन्तु कालान्तर में सामाजिक उत्थान-पतन के क्रम में-'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' का स्वर उभर कर आया। सम्भवत: 'स्त्री विमर्श' और 'दलित विमर्श' की अवधारणा का मूल उत्स यहीं से अधिक साकार हुआ। 'स्त्री' और 'दलितों' को शिक्षा से वंचित करने का इसमें स्वर निहित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस दिशा में बहुत अच्छा कार्य किया और शोषितों-वंचितों की शिक्षा के लिए भारतव्यापी प्रयास किया।

आश्चर्य की बात है कि जहाँ 50 प्रतिशत की आबादी वाली 'स्त्री जाति' उपेक्षित हो और समाज का एक बड़ा तबका 'दलित वर्ग' शिक्षा के अधिकार से वंचित किया गया हो, वहाँ तथाकथित आभिजात्य वर्ग की उच्चता एक सामाजिक कलंक नहीं, तो और क्या है?

"गणितीय आँकड़े यह सिद्ध कर चुके हैं कि दलित वर्ग, आभिजात्य की तुलना में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है, इस पिछड़ेपन को दूर करने के लिए किया गया विमर्श, की गयी समीक्षा और परीक्षा का नाम 'दलित विमर्श' है। विमर्श के लिए अपनायी गयी विधा 'दलित साहित्य' है तथा जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से दीन-हीन है, उसे 'दलित' की संज्ञा दी गयी है। जो केवल आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त है, उसे दलित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से तो एक ब्राह्मण भी अभावग्रस्त हो सकता है, किन्तु गरीब ब्राह्मण को दलित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह सामाजिक दृष्टि से दीन-हीन नहीं है, वह गरीब होते हुए भी, समाज के विशेषाधिकारों को उपभोग करता है, जबकि दलित नहीं। ऐसा क्यों? इसी सवाल का जवाब है-'दलित विमर्श'।[3]

इसी प्रकार "नारी विमर्श साहित्य जगत् के लिए नारी के विविध रूपों को जाँचने-परखने का बढ़िया एवं महत्वपूर्ण जरिया बना हुआ है।.....पुरुष-प्रधान समाज में स्त्रियाँ अपने मन की व्यथा का निवेदन किससे करें? अत्याचारों को सहना उनकी विवशता बन जाती है। असहाय होने के कारण उनके क्रान्तिकारी उद्‌गार चीत्कार में परिणत हो जाते हैं।"[4]

आधुनिक साहित्य में इन वर्गों की बड़ी वकालत की गयी है। इन्हें सामन्ती व्यवस्था के कुचक्रों से मुक्ति दिलाने का पुरजोर प्रयास किया गया है।

मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत पले-बढ़े तुलसी के 'मानस' में इन वर्गों की उपेक्षा करना और 'ब्राह्मण संस्कृति' का 'स्तुति-गान' करना, आधुनिक 'सामाजिक विमर्श' की कसौटी पर स्वीकार्य नहीं है, अपितु त्याज्य है।

'मानसकार' तुलसी के 'नारी विमर्श' और 'दलित विमर्श' को 'ब्राह्मण विमर्श' से पृथक कर

नहीं देखा जा सकता। 'मानस' के विराट् कथानक में अनेक घटना प्रसंग और चरित्र, इन 'विमर्शों' के कटघरे में हैं।

'रामचरितमानस' में विमर्श के बिन्दु हैं--(1)नारी विमर्श (2)दलित विमर्श (3)ब्राह्मण विमर्श।

(1) नारी विमर्श

कतविधि सृजी नारि जग माहीं, पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।

साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक असौच अदाया।

(2) दलित विमर्श

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।

(3) ब्राह्मण-विमर्श

सुन गन्धर्व कहहुँ मैं तोही, मोहि न सोहाइ ब्रह्म कुल द्रोही।

सापत ताड़ित परुष कहन्ता, विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता।

पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।

पूर्व में भी कहा गया है कि इन 'तीनों विमर्शों' को पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। इनमें 'दो' की सामाजिक दीनता-हीनता का उल्लेख है, तो एक की सामाजिक उत्कृष्टता का। क्यों? क्या इन विमर्श के द्वारा पर्याप्त प्रहारक क्षमता का मिसाइल, समाज के हाथों में नहीं दे दिया गया है? उक्त कथन क्या पूरी वर्ण-व्यवस्था और जातीय व्यवस्था के सामाजिक भेदभावजन्य अन्तर्द्वन्द्व को उद्वेलित कर क्षोभ उत्पन्न करने वाला नहीं है? आज के सन्दर्भ में, तार्किक परीक्षण की तुला पर, तुलसी के उक्त सन्दर्भित विचार मान्य नहीं, अपितु त्याज्य हैं।

'जातीय अस्मिता' और 'सामाजिक प्रतिष्ठा' को 'समता' के धरातल पर स्थापित करने का संघर्ष जारी है और आगे भी जारी रहेगा, जब तक कि संवैधानिक संरक्षण के बावजूद, जातीय अवमानना-तिरस्कार, शोषण एवं अन्याय-अत्याचार का दुष्चक्र समाज में जारी रहेगा। 'विमर्श' ही अन्तिम परिणति नहीं है, अन्तिम परिणति है-मानसिक त्रासद-स्थिति से मुक्ति तथा समता, स्वतन्त्रता, न्याय और प्रेम का निश्छल मिलन। वर्तमान समय में, इसी की स्थापना के लिए, पर्याप्त साहित्य-लेखन

ओर विमर्शगत शोध-सम्पन्न हो रहा है, ताकि समाज जागरूक हो सके, सही दिशा में सार्थक-सकारात्मक सोच बदल सके।

तुलसी के 'नारी' और 'दलित' के प्रति अभिव्यक्त विचार को, उनकी 'जातीय' उत्कृष्टता के प्रतीक 'ब्राह्मणवादी संस्कृति' के परीक्षण के पश्चात् ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। अतः तुलसी के 'ब्राह्मणवादी संस्कृति' को, तार्किकता की कसौटी पर कंसा जाना उपयुक्त होगा।

'विमर्श' का बिन्दु है-'*पूजिय विप्र सकल गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।*[5] उक्त कथन की प्रासंगिकता, आधुनिक सामाजिक सन्दर्भ में मूल्यांकित होना अपेक्षित है।

'श्रीमद्भागवतगीता' के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा है-'चातुर्वण्यं मयाँ सृष्टं गुण कर्मविभागशः।'[6] किन्तु कालान्तर में यह वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म के अनुसार न होकर, कुलोद्भूत रूप में परिवर्तित हो गयी। इस परिवर्तन से सामाजिक जन-जीवन पर मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव पड़ा। जातीय 'श्रेष्ठता' और 'लघुता' ने समाज को जर्जर कर दिया, कुंठित कर दिया।

'मानस' में राम का उद्घोष है-'विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।' ऐसे में, समाज का अन्य वर्ग क्या संरक्षण का अधिकारी नहीं है? देवता, गाय, सन्त के साथ 'विप्र' ही क्यों संरक्षण के अधिकारी बने? ब्राह्मण ही क्यों प्रिय बना? जबकि तुलसी ने कहा है कि-"तप बल विप्र सदा बरिआरा, तिन के कोप न कोउ रखवारा।"[7] 'विमर्श' का विचारणीय बिन्दु है कि-

1. जो विप्र तप-बल में सदैव बली रहते थे, और जिनके क्रोध के सम्मुख कोई व्यक्ति अपनी रक्षा नहीं कर पाता था? वही ब्राह्मण संरक्षण का पात्र क्यों बना?
2. इतना ही नहीं, जब ब्राह्मण का छद्म वेष धारण कर हनुमान, समुद्र, रुद्रगण आदि निर्भय होकर विचरण करते थे, तो वास्तविक ब्राह्मण लोग समाज में कैसे पीड़ित हो सकते थे?
3. ब्राह्मणों की रक्षा में भला 'नारी' और 'दलित' वर्ग कहाँ बाधक बनते थे कि उनके विरुद्ध तुलसी का स्वर तीखा रहा?

'मानस' में ब्राह्मणवाची पद

तुलसी ने 'मानस' में ब्राह्मणवाची पदों-विप्र (127), द्विज (53), भुसुर (12), महीसुर (12), महिदेव (9), ब्रहम (5), भूमिसुर (14), वटु (3), बाँभन (1) आदि पदों का कुल 236 बार प्रयोग किया है। यद्यपि शब्द-प्रयोग ही उनके ब्राह्मणवादी संस्कृति के पोषक नहीं हैं, तथापि

सामाजिक सन्दर्भों में तथ्य-ग्रहण करने की दिशा में सहायक अवश्य हैं।

कार्यारम्भ में वन्द्य विप्र

किसी कार्य को सुसम्पादित करने के लिए तुलसी सहित समाज के अन्य लोगों ने देश-काल के अनुसार सर्वप्रथम विप्रों की वन्दना की है। यथा-

(क) *तुलसी-वन्दउ प्रथम महीसुर चरना।*

(ख) *शिव-बैठे सिव विप्रन्ह सिर नाई।*

(ग) *दशरथ-विप्र साधु सुर पूजत राजा।*

(घ) *भातृगण-वन्दि विप्र सुर गुरु पितु माता।*

(ङ) *राम-विप्र चरन पंकज सिर नावा।*

कार्य-सम्पादन में अग्रगणी विप्र

राजा लोग किसी कार्य को सुसम्पन्न करने के लिए भी विप्रों को साथ लेकर चलते हैं, जिसका वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है-

(क) *दशरथ-मुनि आगमन सुना जब राजा, मिलन गये लै विप्र समाजा।*

(ख) *जनक-भुसुर सचिव समेत समाजा, संग चले पहुँचावन राजा।*

(ग) *राम-महिसुर मन्त्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ।*

(घ) *भरत-भुसुर, बोलि भरत कर जोरे, करि प्रनाम बय विनय निहोरे।*

(ङ) *लक्ष्मण-लछिमन तुरत बोलाये, पुरजन विप्र समाज।*

दान के एकछत्र अधिकारी विप्र

'बाँभन को धन केवल भिक्षा' को 'मानस' में भी चरितार्थ होते हुए दिखाया गया है। भोजन एवं दान ही, इनका मान है। दशरथ, कौशल्या, राम, भरत आदि समय-समय पर अवसरानुकूल ब्राह्मणों को भोजन आदि कराकर श्रद्धापूर्वक दान देते हैं।

विप्रों के प्रति अन्याय एवं अत्याचार

'मानस' में विप्रों के प्रति अन्याय एवं अत्याचार के उदाहरण कम हृदय-विदारक नहीं है। ब्राहमण होते हुए भी, कुमार्गी रावण का अपने राक्षसों के लिए आदेश था-

द्विज भोजन मख होम सराधा, सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई, देव विप्र गुरु मान न कोई।[9]

'उत्तरकाण्ड' में 'कलियुग वर्णन' का प्रकरण विप्रों के लिए अत्यन्त कष्टकारी और अपमानजनक है। इसी तिरस्कार को न सहन करने के कारण विप्र कुपित हो जाते थे और शाप दे देते थे।

शाप-दाता एवं तप-बल के धनी विप्र

'मानस' में वर्णित है कि विप्रों में तप-बल अधिक होता है। इसी से वे सदैव बली होते थे-

तप-बल विप्र सदा बरिआरा, तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा।

जो विप्रन्ह बस करहु नरेसा, तो तुअ बस विधि बिस्नु महेसा।

विप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला, तोर नास नहिं कवनेउ काला।[9]

राजा प्रतापभानु और कपटी मुनि की कथा में 'ब्रह्मशाप' को चरितार्थ होते हुए दिखाया गया है। 'मानस' में नारद-मोह एवं जय-विजय की कथा तथा काकभुसुंडि एवं पक्षिराज गरुड़ की कथा के द्वारा भी, शाप के महत्व को वर्णित किया गया है। शिव का कंथन है-

अब जनि करिअ विप्र अपमाना, जानेसु सन्त अनंत समाना।[10]

बाल ब्रहमचारी परशुराम भी 'विप्र' के घातक महत्व का वर्णन करते नहीं अघाते-

निदरहिं विप्र करि जानेहु मोही, मैं जस विप्र सुनावहु तोही।

कवच के रूप में विप्र-वेश की महत्ता

तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में विप्र-वेष-धारण कर, लोग निर्भय होकर अपना काम निकालते थे। यदि हर गणों ने विप्र रूप धारण कर नारद-मोह का तमाशा देखा, तों अन्य देवगणों तथा हनुमान एवं समुद्र ने भी इस वेश को धारण करने का लोभ-संवरण नहीं कर पाये-

(क) रुद्रगण- *रहे तहाँ दुइ रुद्र, ते जानहिं सब भेउ।*

विप्र वेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ।।[11]

(ख) चतुर्वेद-*होम समय तुन धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं।*

विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं।।[12]

(ग) समुद्र-*कनक थार भरि मनि गन नाना। विप्र रूप आयउ तजि माना।।*[13]

(घ) हनुमान-*विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूँछत अस भयऊ।।*[14]

विप्र रूप धरि वचन सुनाये। सुनत विभीषण उठि तहँ आये।।[15]

राम विरह सागर महँ, भरत मगन मन होत।

विप्र रूप धरि पवनसुत, आइ गयेउ जनु पोत।।[16]

राम का विप्र-हित हेतु धरती-अवतरण

तुलसी के नायक राम, जहाँ अधर्मनाश एवं सन्तों तथा गायों की रक्षा के लिए धरती पर अवतरित हुए हैं, वहीं विप्रों के हितार्थ भी उन्मुख हुए हैं-

(क) *विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।।*[17]

(ख) *गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिन्धु मानुस तनधारी।।*[18]

ऐसे अनेक उदाहरण 'मानस' में भरे-पड़े हुए हैं, जिनमें विप्रों के हितार्थ कार्य हुए हैं।

'मानस' में ब्राह्मणों के प्रति पूज्य भाव रखने का सन्देश

'मानस' में ब्राह्मणों के प्रति पूज्य भाव रखने का सन्देश राम, शिव, बाल्मीकि आदि ने दिए हैं-

(क) *राम-पुन्य एक जग महुँ नहीं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पद पूजा।।*[19]

(ख) *शिव-द्विज द्रोहिहिं न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहू।।*[20]

(ग) *बाल्मीकि-तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जेवाइँ देहि बहु दाना।।*

तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोऊ।।[21]

असत् ब्राह्मणों की पूजा और विद्वान् दलित की उपेक्षा का स्वर

तुलसी ने सत् ब्राह्मणों की पूजा का सन्देश तो दिया ही है, सबसे खतरनाक स्वर उनका 'अरण्यकाण्ड' में दुर्वासा ऋषि द्वारा शापित कबन्ध (गन्धर्व) के लिए मुखरित हुआ है, जो आधुनिक, सामाजिक विमर्श के धरातल पर अमान्य ही नहीं, त्याज्य भी है। राम का कथन है-

सुनु गन्धर्व कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्म कुल द्रोही।।

सापत ताड़ित परुष कहन्ता। विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता।।

पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।।[22]

निःसन्देह उपर्युक्त कथन आज के सामाजिक सन्दर्भ में भेदभाव पूर्ण ही नहीं, अपितु सामाजिक ताना-बाना को छिन्न-भिन्न् कर देने वाला है। यह अतिव्यापी दृष्टि का पोषक है। 'गुणहीन' ब्राह्मण की पूजा कहाँ का सामाजिक न्याय है और सम्पूर्ण गुणयुक्त तथा ज्ञान-प्रवीण 'दलित' कैसे अपूज्य हो सकता है?

इस सन्दर्भ में, निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र का कथन 'सामाजिक सम्बन्धों' के परिप्रेक्ष्य में कितना मूल्यवान् है, द्रष्टव्य है-'वयोधिक शूद्र द्विज जाति के लिए माननीय है।' पूरी एक सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा-इस वाक्य में समाहित है।

'आधुनिक विमर्श' की तराजू पर समकालीन कवि धनंजय अवस्थी के खण्डकाव्य 'शबरी' का उदाहरण बड़ा प्रभावकारी और तुलसी के 'उक्त कथन' को 'नकार' कर सामाजिक समरसता और योग्यता के 'मान' को स्थापित करने वाला है। उक्त काव्य में 'वर्ण-भेद' के पुरोधा, वितण्ड मुनि जैसे धर्माधिकारी को शबरी के सम्मुख घुटने टेकते हुए तो दिखाया ही गया है, साथ-ही राम ने सार्वकालिक और सार्वत्रिक सन्देश दिया है-

नहीं वह नीच हो सकता कि जिसका कर्म ऊँचा है।

बड़ा वह हो नहीं सकता कि जिसका कर्म नीचा है।[23]

उपर्युक्त वर्णित 'दलित विमर्श' 'स्त्री विमर्श' की स्थितियों और कमियों के बावजूद, 'विमर्श' की श्रृंखला में तुलसी के 'रामचरितमानस' के शुभ-पक्ष को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। निषाद, शबरी, जटायु, बानर-भालु, विभीषण आदि के प्रति तुलसी के राम के समतामूलक कृत्य समाज-स्वीकार्य, अद्भुत मनोहारी और कम प्रशंसनीय नहीं हैं इन प्रसंगों की अनदेखी नहीं की जा सकती।

'मानस' में 'राम-वन-प्रसंग' में जो मर्मस्पर्शी भाव-बोध निषाद के साथ राम का रहा, वह अति सराहनीय है। वशिष्ठ जैसे समाज-पुरोधा, ब्राह्मण-ऋषि को भी निषाद को गले लगाते हुए दिखाया गया है-'राम सखा बरबस रिषि भेंटा।' यह 'मिलन' जातीय समरसता की पराकाष्ठा का उदाहरण तो है ही, 'सामाजिक उदात्तता' का बीजारोपण भी है, जो तुलसी के 'मानस' का गौरव-पक्ष है। सामाजिक

प्रासंगिकता की दृष्टि से 'निषाद-प्रसंग' के द्वारा, उन लोगों की मान्यताओं का खण्डन होता है, ज़िन पर 'जातीय गौरव' के अहं का भूत सवार है, किन्तु उन लोगों की अवधारणाओं को और भी बल मिलता है, जिनका विश्वास मानव तथा मानवीय गुणों एवं आस्थाओं पर है।

निषाद को गले लगाने, शबरी जूठे बेर खाने, जटायु के सुकृत्य का फल देने, सुग्रीव को सखा बनाने, विभीषण को अभय प्रदान करने में, तुलसी के काव्य रूप का कोई शानी नहीं है। सार्वभौमिक कल्याण करने वाला राम का वचन आधुनिक सन्दर्भों में अत्यन्त आश्वस्तकारी है। राम ने अपने दूत अंगद से रावण के प्रति ऐसा ही भाव-प्रकट करते हुए कहा है-

काज हमार तासु हित होई। रिपु सन कहेउ बतकही सोई।।

कुल मिलाकर, कहा जा सकता है कि आधुनिक 'सामाजिक विमर्श' की तुला पर तुलसी के 'रामचरितमानस' के कतिपय प्रसंग सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त गर्हित और भेद-भावपूर्ण हैं, ये समाज मान्य नहीं, अपितु त्याज्य हैं। किन्तु इन प्रसंगों के अतिरिक्त, ऐसे-बहुत सारे प्रसंग हैं, जो 'विमर्श' की तुला पर खरे ही नहीं उतरते, अपितु उनका उदात्त सामाजिक पक्ष अत्यन्त गौरवशाली है। उनकी सांस्कृतिक, जातीय एवं मनोवैज्ञानिक उपेक्षा नहीं की जा सकती। सामाजिक समरसता, लोक सामंजस्य एवं पारस्परिक सहयोग के लिए मानसिक विरेचन भी आवश्यक है।

सन्दर्भ-सूची

1. वृहद् हिन्दी कोश- (सम्पा0)- कालिकाप्रसाद- ज्ञानमण्डल लिमिटेड-बनारस- पृष्ठ-1215
2. डॉ0 माधुरी पाण्डेय-दलित विमर्श, चिन्तन के कुछ अन्य पहलू-वाग्धारा पत्रिका-(सम्पादक) डॉ0 अनिल कुमार विश्वकर्मा- जनवरी-जून-2008-पृष्ठ 21-22
3. डॉ0 गया प्रसाद 'सनेही'-हिन्दी-साहित्य में दलित चिन्तन : एक विश्लेषण-वाग्धारा-पृष्ठ 26-27
4. डॉ0 सत्यप्रकाश शर्मा-नारी विमर्श और नागार्जुन का कथा-साहित्य-वाग्धारा-32
5. तुलसीदास-श्री रामचरितमानस (अरण्य काण्ड) गीता प्रेस, गोरखपुर-पृष्ठ-433-434
6. श्रीमद्भागवतगीता-गीता प्रेस, गोरखपुर- पृष्ठ- 87।
7. तुलसीदास-रामचरितमानस-बालकाण्ड-पृष्ठ-126
8. वही-बालकाण्ड-पृष्ठ 135-136
9. वही-बालकाण्ड-पृष्ठ 126
10. वही-उत्तरकाण्ड-पृष्ठ-660
11. वही-बालकाण्ड-पृष्ठ-110

12. वही-बालकाण्ड-पृष्ठ-211
13. वही-सुन्दरकाण्ड-पृष्ठ-500
14. वही-किस्किंधाकाण्ड-पृष्ठ-446
15. वही-सुन्दरकाण्ड-पृष्ठ-472
16. वही-उत्तरकाण्ड-पृष्ठ-592
17. वही-बालकाण्ड-पृष्ठ-142
18. वही-सुन्दरकाण्ड-पृष्ठ-490
19. वही-उत्तरकाण्ड-पृष्ठ-621
20. वही-उत्तरकाण्ड-पृष्ठ-677
21. वही-अयोध्याकाण्ड-पृष्ठ-303
22. वही-अरण्यकाण्ड-पृष्ठ-433-434
23. डॉ0 धनंजय अवस्थी-शबरी (खण्डकाव्य), प्रतिमा प्रकाशन, इलाहाबाद-1998, पृष्ठ-109